अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

पत्रांक : मेमो/अ0बौ0के0/15/2020 दिनांक 06.05.2020

अष्टावक्र – विश्राम का वेदान्त (4)

द्रष्टा रुप में कोरोना का विश्लेषण हमें उन कारणों को जानने में सहायक हो सकता है जो इसकी उत्पत्ति के हेतु है। लेकिन जब तक हम 'साक्षी' द्वारा इसका 'अनुभव?' नहीं कर लेते तब तक इसके आविर्भाव के कारणों को नहीं समझ पायेगें और हमें ऐसी वैश्विक समस्याओं के उन्मूलन का मार्ग भी दिखाई नहीं देगा।

अपने सामान्य अनुभव में हम सब या तो दृश्य की भूमिका में रहते हैं नही तो दर्शक की भूमिका में। दर्शक के रूप में हमारे बोध का तीर अनिवार्यतः बाहर की तरफ प्रक्षेपित रहता है और हम स्वयं को भूले रहते हैं लेकिन होश पूर्वक इस बोध के तीर को कभी–कभी अंदर की तरफ मोड़ा जा सकता है, यद्यपि यह कठिन होगा, फिर इस दिशा में प्रयास किया जा सकता है। उदाहरण के लिए हम किसी प्राकृतिक दृश्य को देखने की क्रिया का विश्लेषण करे तो पाते हैं कि सामान्यतः बोध का तीर बहिर्गामी ही रहता है, जैसे– वृक्ष, झरने आदि की तरफ होता है लेकिन बीच–बीच में यदि हम देखने वाले की तरफ भी बोध का तीर मोडते हैं तो प्रारम्भ में निश्चित कठिनाई होती है लेकिन जैसे–जैसे देखने वाला पकड़ में आने लगता है तो ठीक उन्ही क्षणों में जब हमें 'देखने वाला' पकड़ में आ जाता है, तो

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। यह आनन्द कुछ नहीं बल्कि मुक्ति के अहसास का आनन्द है। यह मुक्ति जब घटती है जब दो नहीं रह जाते हैं, एक ही बचता है। वह एक द्रष्टा है जिसके बारे में अष्टावक्र कहते हैं कि वह सदा सचमुच मुक्त है।

इसी द्रष्टा को वे अकर्त्ता, विशुद्ध बोध, साक्षी, व्यापक, पूर्ण, चेतन, क्रिया रहित, असंग, निस्पृह, शांत आदि संज्ञा से व्याख्यायित करते हैं। देह का बंधन – उससे तादात्म्य भी, अष्टावक्र कहते है, 'बोध' से दूर हो सकता है। यही वह तादात्म्य है जो अत्यंत कठिनाई से दूर होता है लेकिन जब हमें यह अनुभूति हो जाती है कि मैं 'बोध' हूँ तो यह भी तत्क्षण ठीक उसी तरह निषेधित होता है जैसे जागने पर स्पप्न निषेधित हो जाते हैं। इसके लिए किसी कृत्य की आवश्यकता नहीं होती है।

''देहाभिमानपाशेन चिरं बद्धोऽसि पुत्रकः।
बोधोऽहं ज्ञानखंगेन तन्निष्कृत्य सुखी भव।।

स्पष्टतः अष्टावक्र यह स्थापित करते हैं कि बंधन केवल मान्यता का है, वास्तविक नहीं। यदि यह वास्तविक होता तो उसे हटाने के लिए अवश्य ही कुछ करना पड़ता। अंधकार अवास्तविक है, इसलिए उसे हटाने के लिए कृत्य नहीं,

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

प्रकाश की आवश्यकता है क्योंकि वस्तुतः प्रकाश का अभाव ही अंधकार होता है। ठीक इसी प्रकार हमारे जितने भी बंधन है जो हमें दुःख देते हैं वे भी हमारी मान्यता के ही होते हैं। दुःख हम तब तक ही पाते है जब तक हम अपनी मान्यता को वास्तविक मानते रहते हैं। चूँकि यह मान्यता हमारी बनायी गयी होती है इसलिए इसे किसी अन्य के द्वारा – शास्त्रों, गुरूओं से दूर नहीं किया जा सकता है। शास्त्र एवं गुरू हमें तथ्य से अवगत कराने में सहायक तो हो सकते हैं लेकिन उस तथ्य को अनुभव में परिणत तो हमें ही करना होगा। रामकृष्ण परमहंस ने जीवन भर माँ काली की पूजा अर्चना की लेकिन उन्हें लगा कि यह तो द्वैत ही है क्योंकि अभी तक उन्हें 'एक' की प्रतीति नहीं हो पायी थी। यह सही है कि यह दो की अनुभूति भी अत्यंत सुखद, प्रीतिकर थी लेकिन अभी अद्वैत न घटने की उन्हें पीड़ा थी। गुरू तोतापुरी से जब उन्होंने इस हेतु अनुरोध किया तो उन्होंने कहा कि तुम दो मानते हो, इसलिए दो है। ऐसा मानना छोड़ दो तो एक ही है। रामकृष्ण परमहंस के यह कहने पर कि यह मान्यता छोड़ पाना कठिन है क्योंकि जब भी मैं आँख बंद कर रस विभोर होता हूँ तो माँ की प्रतिमा सामने होती है और मैं एक होना भूल जाता हूँ। इस पर तोतापुरी ने कहा कि जब भी माँ की प्रतिमा बने तो उसे तत्काल तलवार से दो टुकड़े कर डालो। रामकृष्ण परमहंस के यह पूछने पर कि तलवार कहाँ से लाऊँ, तोतापुरी तत्काल कहते हैं कि जहाँ से माँ की प्रतिमा आती है वहीं

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

से तलवार भी ले आओ अर्थात् मान्यता की माँ की प्रतिमा को मान्यता के तलवार से काट डालो। यही तो अष्टावक्र की सम्पूर्ण देशना है कि हमें अपनी मान्यताओं को खंडित करना है। कहते है कि रामकृष्ण परमहंस ने बार–बार प्रयास किया लेकिन असफल रहे। इस पर तोतापुरी ने कहा कि अब जब भी तुम रस विभोर होगे तब उसी समय मैं तुम्हारा माथा काटूँगा और तुम तलवार उठाकर माँ के दो टुकड़े कर देना नहीं तो मैं तुमको छोड़ चला जाऊँगा। और हुआ भी यही कि रामकृष्ण जैसे माँ के समक्ष रस विभोर होने लगे तोतापुरी ने काँच के टुकड़े से उनके माथे के बीच चीर लगाया और रामकृष्ण ने साहस करके तलवार उठा लिया और माँ के टुकड़े कर दिया, इधर काली माँ गिरी उधर अद्वैत घटित हुआ। लहर सागर में विलीन हो, सागर हो गई। कहते हैं कि रामकृष्ण जब परमहंस हुए तो छः दिन उस परम शून्य में डूबे रहे।

देह जन्य दुःखों या यों कहें कि सभी दुःख देह से जुड़े होते हैं और उन्हें बोध की तलवार से दूर किया जा सकता है क्योंकि 'मैं' देह हूँ यही मान्यता समस्त दुःखों का मूल है। इसी बात को और भी स्पष्ट करते हुए अष्टावक्र कहते हैं कि ''तू असंग है, क्रियाशून्य है, स्वयं–प्रकाश है और निर्दोष है। तेरा बंधन यही है कि तू समाधि का अनुष्ठान करता है।'' यह कथन इतना क्रान्तिकारी है कि जिसकी

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

कल्पना भी दार्शनिक चिंतन में अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई पड़ती है। यह बात पातंजलि के ठीक विपरीत है क्योंकि उनके अनुसार चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है और जब तक यह वृत्तियाँ निरूद्ध नहीं हो जाती तब तक व्यक्ति स्वयं को नहीं जान पाता। समाधि स्वयं को जानने से घटती है। अष्टावक्र इसके विरोध में कहते हैं कि समाधि का आयोजन हो ही नही सकता क्योंकि समाधि तो हमारा स्वभाव है। चित्तवृत्तियाँ तो जड़ है। उनके निरोध का प्रयास तो ठीक वही प्रयास होगा कि हम अंधेरे को दूर करने हेतु भौतिक प्रयास करने लगे। यह सही है कि ***अंधेरा जब दूर होगा तो प्रकाश होगा, या चित्त वृत्तियाँ शून्य होंगी तो योग घटित होगा लेकिन इस का तात्पर्य यह नहीं है कि हम प्रकाश हेतु अंधेरे को दूर करने लगे, योग हेतु चित्त वृत्तियों से लड़ने लगे।*** वस्तुतः अंधेरे को दूर करने के लिए प्रकाश लाना होगा, चित्त वृत्तियों के निरोध हेतु 'स्व' को जानना होगा, बोध लाना होगा।

अंधेरा प्रतीत होता है नहीं, चित्तवृत्तियाँ तभी तक हैं जब तक बोध नहीं। बोध होते ही चित्तवृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। अष्टावक्र की दृष्टि में जीवन में छः लहरें, षट उर्मियाँ हैं– भूख–प्यास, शोक–मोह एवं जन्म–मरण। इसमें भूख–प्यास शरीर की तरंगे हैं, शोक–मोह मन की एवं जन्म–मरण प्राण की तरंगे हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य चूँकि इन छहों तरंगों की अनुभूति करता है इसलिए निश्चित ही वह इनसे

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

परे है, द्रष्टा है। जब हम अपने द्रष्टा स्वरूप को भूल जाते हैं तो मुक्ति, मोक्ष को भी खोजने लगते हैं और बंधन मुक्त होने के स्थान पर नवीन बंधन ही सृजित कर लेते हैं।

इसके आगे के सूत्रों में अष्टावक्र यह स्पष्ट करते हैं कि चूँकि हम शुद्ध चैतन्य स्वरूप है इसलिए हमारी निष्ठा क्षुद्र चित्त में न हो चैतन्य मात्र में होनी चाहिए। अष्टावक्र के अनुसार वही ज्ञान, ज्ञान है जहाँ केवल बौद्धिक समझ ही न हो बल्कि अस्तित्वगत समानांतर घटना भी घटे। क्योंकि ऐसा न होने पर मनुष्य विषादग्रस्त रहेगा। जिस व्यक्ति को यह पता हो कि दरवाजा कहाँ है लेकिन जानते हुए भी वह दीवार से निकलने का प्रयास करता रहे और चोट खाता रहे और इसका कारण न जान पाए कि ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसे व्यक्ति को सब मालूम है और कुछ भी नहीं मालूम है। सब मालूम है क्योंकि उसने शास्त्रों को पढ लिया है, इसलिए उसके लिए जानने को अब कुछ शेष नहीं है। इसलिए सब कुछ जानते हुए चूँकि उसका जानना अनुभव से जाना हुआ नहीं है इसलिए वस्तुतः वह कुछ भी नहीं जानता और बार–बार निकलने के प्रयास में दीवार से टकराते रहने के कारण एक ग्लानि एवं क्षोभ से भी मर जाता है और अपने बचाव हेतु दंभ, अहंकार का सहारा लेता है क्योंकि यह बुद्धि की थोथी समझ से ही उत्पन्न होता है। अहंकार

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

इस बात का होता है कि मैं जानता हूँ लेकिन उसी के साथ उसे वस्तुतः कुछ न जानने की पीड़ा भी रहती है, कुछ घट नहीं रहा होता है। यदि हम सार्त्र की शब्दावली का प्रयोग करें तो स्पष्टतः ऐसा व्यक्ति दुरास्था का शिकार रहता है। दुरास्था में व्यक्ति तथ्यता और अतिक्रमणता के बीच सरलता पूर्वक अग्रसारित होता रहता है। अहंकार कि मैं जानता हूँ (अतिक्रमणता) हमें तथ्यता (कि कुछ नहीं जानता हूँ) को स्वीकार नहीं करने देता। दुरास्था स्पष्टतः अहंकार जन्य एवं उसी से पोषित होती है।

अष्टावक्र इस बात के प्रति सचेत है कि ज्ञान की घोषणाएँ अहंकार फलतः दुरास्था का आधार नहीं होनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही जनक ने उस सबकी घोषणा करनी प्रारम्भ की जो उन्हें घटा था अष्टावक्र सचेत हो जाते हैं कि कहीं यह घोषणाएँ छद्म तो नहीं है। अष्टावक्र के उद्घोष से जनक तत्क्षण प्रतिध्वनि करने लगे। जनक कहने लगे कि न केवल मैं जाग गया बल्कि यह भी जान गया कि मैं ही समस्त का केन्द्र अधिष्ठान हूँ। सब मुझसे ही संचालित है अतः मुझ का मुझ ही को नमस्कार है। द्रष्टा होते ही यह अनुभव होता है कि सब कुछ मेरा है क्योंकि मैं ही समस्त अस्तित्व का केन्द्र हूँ। द्रष्टा स्पष्टतः व्यक्तिगत रूप न हो समष्टिगत रूप है। हम सभी भोक्ता, कर्ता के रूप में भले ही अलग–अलग हो लेकिन द्रष्टा के रूप

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

में हम सब एक है। एक का द्रष्टा दूसरे के द्रष्टा से अभिन्न है, एक है। द्रष्टा बनते ही बोध होता है कि हम विश्व के केन्द्र हैं, जैसे ही हम मिटते हैं वैसे ही पूरे होते हैं। बूँद के रूप में खोते हैं लेकिन सागर का अस्तित्व प्राप्त करते हैं। 'मैं' की सीमा विसर्जित होते ही 'तू' अनंत से एकाकार होते हैं। घट के टूटने पर ही घटाकाश, आकाश हो सकता है।

जनक की अनुभूति यहीं तक सीमित नही रहती है तभी उन्हें द्रष्टा से आगे साक्षी की भी झलक मिलती है क्योंकि वे कहते हैं कि–

''ज्ञानं ज्ञेयं तथा ज्ञाता त्रितयं नास्ति वास्तवम।
अज्ञानांद्राति यत्रेदं सोऽहमास्मि निरंजन।।

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, ये तीनों यथार्थ नहीं है। जिससे ये तीनों मासते हैं, मैं वही निरंजन हूँ। जनक कहते हैं कि जैसे ही मैं जागा मुझे देखने वाला , देखी जाने वाली वस्तु तथा दोनों के बीच जो सम्बन्ध है (ज्ञान का, दर्शन का) सभी स्वप्न प्रतीत हुए। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता का जो विभाजन है वह बोध के साथ ही स्वप्नवत प्रतीत होता है क्योंकि इन तीनों को खंड के रूप में जानने वाली सत्ता अखंड ही होगी। जनक इस बात को रेखांकित करते हैं कि जहाँ–जहाँ खण्ड प्रतीत होता है वह स्वप्न ही है क्योंकि अस्तित्व तो अखण्ड है। यह सही है कि खण्ड की

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

व्यावहारिक सत्ता है लेकिन उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं मानी जा सकती है। हम कोई घर बनाते हैं तो उसका आकाश, पड़ोसी से घर के आकाश से भिन्न नहीं होता। दोनों घरों की दीवारें आकाश में भिन्नता नहीं लाती है ***दीवारों की अपनी उपयोगिता है, बाँटना हमारी जरूरत है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि बाँटने से जो भिन्नता दिखती है वह सत्य है। सत्य तो अनबँटा, अखण्ड होता है। व्यावहारिक रूप से जो सत्य है वह भले ही उपयोगी हो लेकिन वास्तविक नहीं होता जबकि पारमार्थिक रूप से जो सत्य है वह उपयोगी नहीं होता लेकिन वास्तविक अवश्य होता है।*** यही वह कसौटी है जो धर्म को विज्ञान से, अनुभव को ज्ञान से भिन्न करती है। धर्म सत्य है लेकिन विज्ञान के समान उपयोगी नहीं, इसी तरह हमारे अनुभव हमारे लिए सत्य होते होते हैं भले ही ज्ञान के समान उनकी उपयोगिता न हो। यही कारण है कि जब तक ज्ञान, अनुभव में नहीं आता तब तक वह मात्र कोरा शब्द, वाग्जाल, सिद्धान्त मात्र रहता है।

इसी से यह सुनिश्चित करने के लिए कि जनक जो कह रहे हैं वह मात्र कोरा शब्द तो नहीं जिसे वे अभिभूत होकर कह रहे हैं। कहीं वे यह तो नही मान बैठे है कि शब्द ही सत्य है, कही वे शब्दों की पुनरूक्ति ही तो नही कर रहे हैं क्योंकि अष्टावक्र जैसे सद्गुरू से निकले शब्द ऊर्जा सम्पन्न, अनुभूति जन्य होते हैं

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

इसलिए खतरा है कि हम उन शब्दों को उसी रूप में व्यक्त कर दें कि मानो यह हमारे स्वानुभव से उत्पन्न है। इसी शंका के निवारण हेतु अष्टावक्र अगले 46 से 59 सूत्रों तक जनक की परीक्षा विभन्न तरीके से लेते हैं। वे जानना चाहते हैं कि आत्मा को तत्वतः एक और अविनाशी जानने के उपरान्त जनक को क्या अभी भी धन में रूचि है? क्या राग पैदा हो रहा है? क्या वे वासनाओं के पीछे दौड़ रहे हैं? क्योंकि आत्मा को अत्यंत सुंदर एवं शुद्ध चैतन्य के रूप में सुनकर भी लोग विषयों में आसक्त रहते हुए मलिनता को प्राप्त करते हैं, सब कुछ जानते हुए भी मुनि को ममता होती है, मुमुक्षु भी काम के वशीभूत विकल रहता है, इतना ही नहीं मृत्यु के समीप खड़े व्यक्ति को भी काम भोग की इच्छा बनी रहती है। अष्टावक्र कहते हैं कि इहलोक एवं पर लोक के भोग से विरक्त नित्य अनित्य का विवेक रखने वाला मुमुक्षु भी मोक्ष से भयभीत देखा जाता है। धीर पुरूष सुख से सुखी एवं दुःख से दुःखी नहीं होता, जहाँ एक तरफ वह केवल आत्मा को देखता है वही दूसरी तरफ अपने शरीर को भी दूसरे के शरीर की भाँति देखता है इसी से वह स्तुति एवं निंदा से क्षुब्ध नहीं होता। विश्व को माया मात्र देखने वाला ऐसा व्यक्ति मृत्यु से भयभीत नहीं होता है। ऐसा ही व्यक्ति आत्म ज्ञान से तृप्त और मोक्ष में भी स्पृहा नहीं रखने वाला होता है।

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

उपर्युक्त प्रश्नों के माध्यम से अष्टावक्र सुनिश्चित करना चाहते हैं कि जनक कहाँ खड़े हैं? यदि अभी भी उन्हें मोक्ष की वासना है, मुक्ति की आकांक्षा है और धन्यवाद देने के स्थान माँगना ही चाहते हैं तो उनका आत्मज्ञान, आत्मज्ञान है ही नहीं; उनकी परितृप्ति, तृप्त नहीं है। वे जनक को अवसर देते है कि वे अपने को वास्तविकता में देख लें। इसके आगे के सूत्र में वे यह जानना चाहते हैं कि क्या जनक की दृष्टि में अभी भी कुछ वांछनीय और कुछ त्याज्य है। क्योंकि दोनो – भोग एवं त्याग कृत्य है, दोनों में ही अहंकार निर्मित होता है, साक्षी विस्मृत रहता है। साक्षी ही द्वंद्वरहित एवं आशारहित होता है प्राप्य – चाहे दुःख हो, चाहे सुख हो, से अप्रभावित रहता है। अष्टावक्र जनक की उद्घोषणाओं को साक्षी की कसौटी पर कसना चाहते हैं। यदि जनक यह कहते हैं कि सब कुछ मेरे कारण हो रहा है तो 'मैं' की भ्रांति पैदा होती है कि यह मैं कर रहा हूँ चाहे भोग की दिशा में, चाहे त्याग की दिशा में अर्थात् मैं अपने को कर्त्ता मान रहा हूँ उस स्थिति 'मैं' जन्य समस्त उद्घोषणाएँ शब्द मात्र होगी। जब तक हम यह न अनुभव कर ले कि जो हो रहा है समस्त के कारण हो रहा है जिसका मैं सिर्फ द्रष्टा हूँ, तब तक हमारी समझ, दृष्टि साक्षी से दूर होती है।

अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

अष्टावक्र की सम्पूर्ण देशना का सार यही है कि जिस प्रकार विचार करने से वस्तु हमें तंतुमात्र ही लगता है ठीक उसी प्रकार विचार करने से यह संसार आत्म–मात्र लगता है। यह कथन ज्ञानात्मक न हो अस्तित्वपरक है। जब भी वस्तु को हम बोधपूर्वक देखते है तो पाते है कि वस्त्र तंतुओ के जाल मात्र है। तथ्य है कि हम तंतुओं को पहन नहीं सकते लेकिन उनके विशिष्ट संयोजन – वस्त्र को हम पहन सकते हैं। इसके पूर्व व्यावहारिक सत्य एवं पारमार्थिक सत्य की विवेचना करते हुए हमने कहा था कि व्यावहारिक सत्य उपयोगी होता है वास्तविक नहीं है जबकि पारमार्थिक सत्य वास्तविक होता है उपयोगी नहीं। इस दृष्टि से वस्त्र व्यावहारिक रूप से सत्य है क्योंकि उपयोगी है जबकि तंतु पारमार्थिक रूप से सत्य है क्योंकि यही वह है जिससे वस्त्र बनता है। आवश्यकता देखने के ढंग को परिवर्तित करने की है। एक दृष्टि से वस्त्र सत्य है तो दूसरी दृष्टि से तंतु सत्य है। ठीक इसी तरह यदि जगत को आत्मा की दृष्टि से विवेचित करेंगे तो वह आत्मवत् लगेगा लेकिन यदि अनात्म दृष्टि से देखेंगे तो वही जगत, संसार आभास प्रतीत होता है। अष्टावक्र इसी आत्मवत् दृष्टि – साक्षी के आग्रही है और साक्षी के उदय होते संसार लुप्त हो जाता है।

अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः **skt_gpu@yahoo.com**

विगत प्रबोधनों के आधार पर यह निष्कर्ष निःसृत होता है कि विश्व समुदाय आज कोरोना जैसी जिन भी समस्याओं एवं प्रश्नों से अपने को घिरा पाता है उस सबका कारण हमारा चीजों को देखने का नजरिया। हम आज वस्तुपरक दृष्टि से अस्तित्व को समझना चाहते हैं न कि आत्मपरक दृष्टि से। वस्तुओं को ही नही हम जीवन, जगत एवं मनुष्य को भी वस्तु की ढंग से विवेचित कहना चाहते हैं जबकि आवश्यकता इस बात की है कि ***हम मनुष्य के साथ–साथ जीवन एवं जगत, वस्तुओं को आत्मपरक दृष्टि से समझे तभी हमें यह ज्ञात होगा कि परस्परतंत्रता इस सृष्टि का आधार है सभी की अपनी–अपनी भूमिका है क्योंकि सभी अस्तित्वगत अर्थों में जीवन्त हैं। यही समझ विनाश के कगार पर खड़ी मानवता की रक्षा कर सकती है अन्यथा होनी को कौन टाल सकता है?***

सुशील कुमार तिवारी
(विषेश कार्याधिकारी)
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर।